ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December- 2017
Innovation The Research Concept

गाँधीजी के लोकतंत्र सम्बन्धी विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता–एक समसामयिक अध्ययन

गुलाम रसूल खान
व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय
कोटा ,राजस्थान

सारांश

गाँधी जी पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र के विरोधी थे लोकतंत्र के आंतरिक संकटों को उन्होंने सभ्यता का संकट माना है तथा उनके निराकरण का एक मात्र विकल्प जनशक्ति पर आधारित सर्वोदयी समाज को बताया उनकी दृष्टि में लोकतंत्र का संकट एक राजनीतिक संकट मात्र नहीं है बल्कि सभ्यता का सार्वदैशिक संकट था। गाँधी जी ने ग्राम स्वराज्य की बात कही तथा कहा कि प्रत्येक गाँव एक सम्पूर्ण राज्य होना चाहिए, गाँधी जी ने लोक निर्माता व्यक्ति को प्राथमिक केन्द्र बिन्दु माना गाँधी जी का लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अन्य अवधारणाओं की भाँति उनकी अध्यात्मिक आस्था से संबंध है गाँधी जी ने भारत में लोकतंत्र की सफलता के लिए प्रथम स्तर पर कुछ बातों को महत्त्वपूर्ण माना है जैसे – सत्याग्रह, अहिंसा, ग्रामीण उद्योगों का विकास, प्रथमिक शिक्षा, छुआ–छूत निराकरण, साम्प्रदायिक एकता एवं श्रमिकों का अहिंसक संगठन आदि। गाँधी जी के लिए लोकतंत्र का अर्थ नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे व्यक्ति को आगे बढ़ाने का समान अवसर प्राप्त होना है तथा व्यस्क मताधिकार, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार एवं कर्तव्यपालन का होना है। अतः वर्तमान में शस्त्रीकरण, वैज्ञानीकरण, एवं वैश्वीकरण के दौर में गाँधी जी का ग्राम आधारित लोकतंत्र मानवीय विकल्प है क्योंकि गाँधी जी का स्वराज्य अध्यात्मीकरण की वैचारिक आधारशिला पर आधारित है।

मुख्य शब्द : लोकतंत्र, उदारवाद, सत्याग्रह, सर्वोदय, अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, कर्तव्यपालन, छुआ–छूत निराकरण, पाश्चात्य सभ्यता, लोकशक्ति, शिक्षा, संपत्ति, संस्कृति।

प्रस्तावना

गाँधी जी ने अपने आदर्श समाज को सर्वोदय के रूप में देखा है गाँधी जी का लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाना है जिसमें न कोई गरीब होगा, न कोई भिखारी, न कोई ऊँचा और नाही कोई नीचा होगा सब लोग अपने आप रोटी कमाने के लिए मेहनत करेंगे, स्त्रियों का सम्मान करेंगे, सब धर्मों का आदर करेंगे व छुआछूत का अंत करेंगे। गाँधी जी धर्म और राजनीति को जीवन में महत्त्वपूर्ण मानते थे उनका मानना था कि धर्म को राजनीति से अलग करके नहीं देखा जा सकता क्योंकि धर्मविहीन राजनीति आत्मा का हनन करती है और इसी कारण गाँधी जी ने पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र का विरोध किया तथा सर्वोदय, अहिंसा, स्वतंत्रता, समानता, सत्याग्रह, धर्म एवं कर्तव्यपालन पर आधारित संसदीय लोकतंत्र का समर्थन किया तथा शोषण, हिंसा, छुआछूत, नक्सलवाद, जातिवाद, जातीय संघर्ष, आदि का विरोध किया तथा लोकतंत्र के प्रति निष्ठा व आस्था को महत्त्वपूर्ण माना।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है–

1. गाँधी जी के लोकतंत्र संबंधी विचारों का विश्लेषण करना।
2. वर्तमान भारतीय लोकतंत्र के समक्ष विद्यमान चुनौतियों का विश्लेषण करना।
3. गाँधी जी के लोकतांत्रिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
4. गाँधी जी के विचारों के माध्यम से वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में सुधार करना।

साहित्यावलोकन

विद्युत चक्रवर्ती (2006) ने अपनी पुस्तक श्सोशल एण्ड पोलिटिकल थ्योरी ऑफ महात्मा गाँधीश में गाँधी के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का विस्तृत विश्लेषण किया है।

डगलसए ऐलन (2008) ने अपनी पुस्तक श्द फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गाँधी फॉर द 21 सेन्चुरीश (21 वीं सदी के लिए महात्मा गाँधी का दर्शन परिचियात्मक अध्ययन में गाँधी जी के लोकतांत्रिक विचारों की 21 वीं शताब्दि में प्रासंगिकता पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

नागरए पुरूषोत्तम (2000) ने अपनी पुस्तक श्आधुनिक भारतीय सामाजिक व राजनीतिक चिन्तनश में गाँधी जी के लोकतांत्रिक विचारों एवं भारतीय लोकतंत्र की समस्याओं का विश्लेषण किया है।

रामजी सिंह (2008) ने अपनी पुस्तक श्गाँधी और मानवता का भविष्यश में लोकतंत्र एवं मानवता की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण सुझावों पर प्रकाश डाला है।

डॉ॰ कृष्ण कुमार रत्तू एवं डॉ॰ कमला (2008) ने अपनी पुस्तक श्समग्र गाँधी दर्शनए गाँधी चिन्तन ओर वर्तमान प्रसंगश में लोकतंत्र की वर्तमान चुनौतियों का गाँधीवादी तरीके से समाधान का विश्लेषण किया है।

डॉ॰ धर्मवीर चंदेल (2012) ने अपनी पुस्तक श्गाँधी चिन्तन के विभिन्न पक्षश में गाँधी जी के लोकतंत्र संबंधी विचारों का विश्लेषण किया है।

शोध सीमा

शोधकार्य करते समय शोधार्थी के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि वह अपने कार्य की सीमाओं का ध्यान रखे व इसे इस प्रकार से समायोजित करे कि शोधकार्य नियत समय पर पूर्ण हो सके। अतः प्रस्तुत शोधकार्य की समय की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए केवल गाँधी जी के लोकतंत्र संबंधी विचार एवं वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण तक सीमित रखा गया है ताकि शोधकार्य नियत समय पर पूर्ण हो सके।

शोध पद्यति

किसी भी शोधकार्य के लिए उपयुक्त शोधविधि का चयन करना अत्यंत आवश्यक है उपयुक्त शोधविधि का चयन करके ही शोधार्थी अपने शोधकार्य को यथेष्ट परिणाम तक पहुँचा सकता है। इसलिए इस प्रस्तुत शोध में विश्लेषण एवं अवलोकन विधि का प्रयोग करके अपने परिणाम प्राप्त किए गए हैं।

गाँधी जी के राजनीतिक विचारों, दर्शन एवं कार्यशैली का विस्तृत अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने राजनीतिक कार्यक्रमों में मुख्यतः जिन 8 मुद्दों पर निरन्तर संघर्ष किया है वे हैं – नक्सलवादए उपनिवेशवादए जाति व्यवस्था, राजनीति सहभागिताए आर्थिक शोषण, स्त्रियों की दुर्दशाए धार्मिक एवं नस्लीय तथा अहिंसात्मक साधनों के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए।

शायद इन्हीं कारणों से महात्मा गाँधी विरोध करने वाले दार्शनिक माने जाते हैं। परन्तु संघर्षए विवादए मतभेदए लड़ाई–झगड़े की स्थिति में जो समाधान के साधन गाँधीजी ने बताए हैंए उनको लेकर भी वर्तमान में राजनेता गाँधीजी की तरफ ही उन्मुक्त होते दिखाई दे रहे हैं। अतः गाँधीजी की उपादेयता और उपयोगिता तब तक समाप्त नहीं होती दिखाई नहीं दे रहीए जबतक स्वयं इस प्रकार के विवाद और झगड़े ही समाप्त न हो जाएए क्योंकि पश्चिम की तर्ज पर हमने संसदीय लोकतंत्र स्वीकार किया था ओर थोड़े समय बाद ही वह जनतंत्र न रहकर दलीय तन्त्र हो गया और दलों की जो बुराईयाँ होती हैंए वह भारत के राजनीतिक जीवन में घर कर गयी है। हमने लोकतंत्र के माध्यम से जो सुखीए शान्तए समृद्ध और उत्कृष्ट जीवन का सपना देखा थाए वह गाँधीजी के सपनों का भारत नहीं बन पाया।

विश्लेषण एवं परिणाम

गाँधी के विचारों से स्पष्ट होता है कि गाँधीजी के राजनीतिक विचारों में लोकतंत्र के प्रति निष्ठा सर्वत्र विद्यमान हैं। लोकतंत्र में समाज के पिछड़े वर्ग को राजनीतिक अधिकारों तथा व्यवस्था के निर्णयों को प्रभावित करने की मांग सतत् होती रही है। गाँधीजी ने भी लोकतंत्र में सामाजिक उत्थान के पक्ष को महत्त्व दिया है। ये अभिजात तन्त्रीय लोकतंत्र तथा पंचवर्षीय मतदान प्रणाली वाले औपचारिक लोकतंत्र के पक्ष में नहीं है। उनके लोकतंत्र में एक ओर समाज के दलित वर्गों द्वारा पूँजीपतिए कुलीन वर्गों के नियन्त्रण के विरूद्ध राजनीतिक आन्दोलन की प्रेरणा मिलती हैए तो दूसरी ओर उनके आदर्श समाज की माँग भी हैए जिसमें व्यक्ति को स्वशासन का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके। गाँधीजी के सर्वोदयी उदारवादी लोकतंत्र में दलविहीन राजनीति के दर्शन होते हैं। उनका यह मानना रहा है कि लोकतंत्र के स्वतंत्र व स्पष्ट विकास में राजनीतिक दलों ने अनेक बाधाएँ उत्पन्न की हैं। गाँधीजी सर्वोदय तथा अन्तोदय की दृष्टि से ऐसे समतावादी समाज के उत्पादक हैंए जिसमें नेता तथा जनता एक ही धरातल पर सादगी एवं संयम से जनसेवा का कार्य करते रहे। उन्होंने उद्योगवाद से रहित ऐसे समाज की नींव रखी हैए जिसमें स्वावलम्बन द्वारा व्यक्ति अपनी आजीविका तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता हैं। हिंसाविहीन राजनीति का सूत्रपात कर गाँधीजी ने स्वतंत्रताए समानता तथा परोपकारिता के आदर्शों को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सफलतापूर्वक प्रयोग किया। वे राज्य के अवलम्बन से व्यक्ति को मुक्त कर जनजीवन में ऐसी जागृति उत्पन्न करना चाहते हैंए जिससे बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक विद्रोह की स्थिति उत्पन्न न हो। सविनय अवज्ञा तथा सत्याग्रह द्वारा लोकतंत्र के मूल्यों की रक्षा करते हुए गाँधीजीने राजनीति से गठबंधनों तथा जोड़–तोड़ की सौदेबाजी को समाप्त कर व्यक्ति निर्णयों को शुद्धता तथा विवेकयुक्त सत्यनिष्ठा को महत्त्व दिया हैं। गाँधीजी लोकतंत्र को मिलावट विहिन अहिंसा का शासन मानते है। लोकतंत्र अर्थात अहिंसा व्यक्ति की आत्मशुद्धि ओर नैतिक उत्थान को लिए हुए हैं। राजनीतिक स्वशासनए जिसमें पुरूष एवं स्त्रियों का स्वशासन अन्तर्निहित हैए वे पश्चिमी देशों के लोकतंत्रीय उदाहरण से संतुष्ट नहीं हैंए क्योंकि वहाँ शस्त्रों की होड़ साम्राज्यवादए शोषणए पूँजीवादए राजनीतिक अस्थिरताए भ्रष्टाचार तथा अच्छे नेतृत्व के अभाव ने सच्चे लोकतांत्रिक मूल्यों को भुला दिया है। राज्य का आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप राज्य शक्ति के बढ़ते हुए दायरे का प्रतीक बन व्यक्तिगत स्वतंत्रता को निगलने के लिए मुँह बाये खड़ा है। ऐसे भयावह राज्य से मुक्ति प्राप्त करने के लिए उचित नियंत्रण व संतुलन ढूँढने की आवश्यकता ही गाँधीजी के लोकतांत्रिक मूल्यों की तलाश हैं। प्रभुत्व मतदाताओं द्वारा चुनी हुई संसद भी कुछ नहीं

कर पाती है। उसका स्वार्थ और दंभ उनके चिन्तन को संकीर्ण बना देता है। आज के निर्णय कल बदल दिए जाते हैं। संसद के सदस्य या तो ऊँघते व आराम करते हुए दिखाई देते हैं या फिर लड़ते–झगड़ते दिखाई देते हैं। दल के लिए बिना सोचे–समझे मतदान करते हैं ऐसे व्यक्ति को ना तो देश भक्त ही कहा जा सकता है और न ही ईमानदार एवं अन्तःकरण से प्रेरित ही कहा जा सकता है। मंत्रियों व प्रतिनिधियों के साथ ही गाँधीजी ने मतदाताओं को भी आड़े–हाथों लिया हैए क्योंकि मतदाता प्रायः अस्थित चित्त के होते हैं। वे किसी भी ओछपूर्ण तथा दावत सत्कार करने वाले व्यक्ति का अनुगमन कर सकते हैं। यह सभी त्रुटियाँ पश्चिमी लोकतंत्र में है। अतः वहाँ की सभी लोकतांत्रिक संस्थाएँ अलोकतांत्रिक बन गयी हैं। संसद दासता का प्रतीक राष्ट्र का खर्चीला खिलौना मात्र हैए जिसमें धन तथा समय दोनों का अपव्यय होता है। अतः पाश्चात्य लोकतांत्रिक संस्थाओं को गाँधीजी ने अपूर्ण माना है। उनका आलोचना का मुख्य आधार पाश्चात्य लोकतंत्र में व्याप्त हिंसा तथा असत्य की स्थिति है। गाँधीजी ने अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित स्वराज्य की कल्पना में राज्य का स्वरूप सत्य तथा अहिंसा से ओतप्रोत लोकतांत्रिक राज्य का माना हैए जिसमें वे भ्रष्टावार व दम्भपूर्ण व्यवहार जो समूल नष्ट करना चाहते हैंए उन्होंने संख्या के स्थान पर सेवा तथा त्याग की भावना से युक्त समानता का आदर्श स्वीकार किया है और ऐसे लोकतांत्रिक को जबरन विकसित नहीं किया जा सकता है। इसी कारण लोकतांत्रिक की भावना बाहर से नहीं थोपी जा सकती है। इसे अन्दर से बाहर आना होता है। इसीलिए गाँधीजी निर्वाचन और प्रतिनिधित्व को स्वीकार करते हैंए परन्तु मतदाता के लिए अधिक शर्त की सेवा भी स्वीकार करते हैं। विकेन्द्रित सत्ता को सार्वभौमिक मताधिकार से युक्त अनुशासित एवं राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमान निर्वाचकों द्वारा निर्वाचित कराना चाहते हैं।

उनकी स्वयं की मान्यता कुछ चुने हुए जनप्रतिनिधियों द्वारा जो जनता की इच्छा से हटाए भी जा सकेए लोकतांत्रिक राज्य को अनुशासित करने का हैए जन प्रतिनिधियों की संख्या कम करना चाहते हैं। राज्य के कार्यों को सीमित करना चाहते हैं। इसलिए गाँधीजी एक भिन्न–भिन्न प्रकार का लोकतन्त्र चाहते हैं और जितने गाँव की संख्या हैए उतनी ही यूनिटों में शक्ति को विकेन्द्रित करना चाहते हैं। ऐसा लोकतन्त्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित होगा और वर्तमान में प्रचलित दोषों का मुकाबला करने में सक्षम साबित होगा।

गाँधीजी के अनुसार व्यक्तिगत स्वराज्य से तात्पर्य है – निःस्वार्थए योग्य एवं निर्विकार होना। चयन के इच्छुक व्यक्ति को पदलोलुपताए आत्मप्रशंसाए विपक्ष को अपमानित करने तथा मतदाताओं का मनोवैज्ञानिक शोषण करने की वर्तमान बुराईयों से मुक्त होना चाहिए। प्रचार के कारण मत नहीं मिलने चाहिएए अपितु अर्पित सेवा के गुण हेतु मत प्राप्त होने चाहिए।

चूँकि गाँधीजी सत्याग्रही हैं। अतः सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति जो सेवा तथा मानव प्रेम के कारण पद ग्रहण करता हैए उसे विभिन्न प्रलोभनों से दूर रहना चाहिए।

गाँधीजी के अनुसार मतदाता के लिए सम्पति और शिक्षा की योग्यता प्रवर्चनापूर्ण है। शारीरिक श्रम की योग्यता ही सच्ची योग्यता का आधार हैए क्योंकि शारीरिक श्रम शासन तथा राज्य की भलाई में कार्य करने के अवसर सदा के लिए प्रस्तुत करता है। श्रम पर आधारित मताधिकार राजनीति में रोजी–रोटी के सिद्धान्त को क्रियान्वित करता है। रोजी–रोटी के आदर्श का बुद्धिमता एवं जागरूकतापूर्ण प्रयोग मतदाता को राजनीतिज्ञों के हाथ का मोहरा नहीं बनने देता एवं व्यक्ति में स्वावलम्बन आत्मविश्वास एवं अभय के गुणों की अभिवृद्धि होती है।

इस तरह निर्भय व्यक्ति ही लोकसेवा कर सकता है। इस प्रकार गाँधीजी का लोकतन्त्र एक ऐसा आदर्श लिए हुए हैए जिसमें व्यक्ति समुदायए प्रकृति एवं परमात्मा सबको जोड़ने का प्रयास किया गया है तथा गाँधीजी की अहिंसक राज्य एक तरह से आध्यात्मिक प्रजातन्त्र पर आधारित हैए परन्तु वर्तमान में इस आध्यात्मिक प्रजातन्त्र का कोई ग्राहक दिखाई नहीं देता है।

लक्ष्य की दृष्टि से गाँधीजी ने अहिंसक प्रजातन्त्र का आदर्श सर्वोदय सबका कल्याण माना है। उनके अनुसार यह लोकतन्त्र बहुमत और अल्पमत के हितों को पृथक–पृथक नहीं मानेगाए अपितु ऐसे वातावरण का निर्माण करेगाए जिसमें अल्पमत और बहुमत के हितों के मध्य कोई भेद नहीं रहेगा। इस व्यवस्था में शासन सबसे कमजोर व्यक्ति के हितों की सुरक्षा को भी सर्वोपरि महत्त्व देगा। कमजोर और दलित निम्न वर्गों का उत्थान इस शासन व्यवस्था का सर्वोपरि ध्येय होगाए ताकि सर्वांगीण विकास की व्यवस्था बनी रहे। इस लोकतन्त्र की प्रेरणा बन्धन के उपयोगितावादी आदर्श श्अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुखश से नहींए अपितु समस्त मानवों का श्रेष्ठ कल्याण होगा। व्यक्तियों के सर्वकल्याण की परिधि में नैतिकए सामाजिकए आर्थिक व सामाजिक कल्याण शामिल होंगे।

गाँधीजी ने लोकतन्त्र को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि केवल लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ ही शासन के लोकतान्त्रिक होने का मापदण्ड नहीं होताए अपितु लोकतान्त्रिक भावना की अभिव्यक्ति तो उन आदर्शों में होती हैए जिनके लिए शासन सक्रिय और प्रयत्नशील रहता है। अतः अहिंसक लोकतन्त्र बहुमत या अल्पमत शासन नहींए अपितु न्याय का शासन होगा।

इस व्यवस्था में शासन द्वारा मनमाने निर्णय लेने की संभावना नहीं होगीए क्योंकि न्याय और विधि के शासन का विचार शासन की समस्त संस्थाओं को अनुप्राणित करेंगे और ये विधि निर्माण तथा कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग के औचित्य के मापदण्ड माने जायेंगे।

वर्तमान भारतीय समाज पाश्चात्य सभ्यता से अत्याधिक प्रभावित हैं परन्तु आधुनिक भारतीय सभ्यता का संकट यही है कि इसका गतित्व समाप्त हो चुका हैए किन्तु नवीन सभ्यता शिशु का अब तक जन्म नहीं हो सका हैं। शायद यह इसकी प्रसव वेदना का काल है। ओसवाल्डए स्पेगलरए डेनिलवस्कीए अर्नल्ड टायनबी आदि के मतों को उर्द्धत करते हुए ए०एल० क्रोवर ने आधुनिक सभ्यता का जन्म कुण्डली स्थित कालचक्र के अनुसार यह भविष्यवाणी

कर दी है कि इस सभ्यता का अन्त 21वीं सदी के मध्य सुनिश्चित है। जब किसी तत्वज्ञान या सामाजिक संरचना का सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो जाता है तो वह जनता की आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं से अनुबंध नहीं रखने के कारण सामाजिक क्रांति का उपकरण नहीं बन सकता। इसी वैश्विक संदर्भ में दादा धर्माधिकारी ने सर्वोदय के सांस्कृतिक आधार की प्रस्तुति में तीन बिन्दुओं को रखा है–

1. शास्त्र का सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है।
2. यंत्र का सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है।
3. प्रचलित लोकतन्त्र का सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है।

सर्वोदय का आधार एवं स्वरूप सांस्कृतिक है और हमारा संकट भी सांस्कृतिक है। अतः सर्व प्रथम हमें सांस्कृतिक मूल्यों के परीक्षण के लिए एक कसौटी तय करनी होगी। सामाजिक जीवन की प्रतिष्ठा को हम मूल्य कहते हैं। प्रमाणिकता उसका पहला लक्षण है और उसकी कसौटी है – श्अपने जैसा दूसरों को जाननाश अर्थात् मैं अपने लिए जो करूँगाए वह दूसरों के लिए करूँगा और पहला कदम मैं उठाऊँगा। कोई दूसरा पहला कदम उठाएए इस बात का इन्तजार मैं नहीं करूँगा। इसी को हम श्फल निरपेक्ष कर्त्तव्यश कह सकते हैंए जिसे कांट ने *ब्जमहवतपबंस प्उचमतंजपअम* या गीता में अनासक्त कर्म की संज्ञा दी गई है। उपयोगितावादी दृष्टिकोण से ऐसा कर्म भले ही दिखेए लेकिन स्वायत्त जीवन की फल निरपेक्षता इसलिए व्यर्थ नहीं जा सकती हैए क्योंकि फल निरपेक्षता का अर्थ है कि फुटकर फलों की आशा छोड़कर अंतिम फल की आशा करना यानि व्यापक अभिलाषा का नाम ही निराभिलाषा है। जब स्वार्थ परार्थ से आगे बढ़ जाता है तो परमार्थ हो जाता है। उसी तरह जब व्यक्ति का कल्याणए सभी के कल्याण का पर्याय बन जाता हैए तो वह सर्वोदय कहलाता है। जो तात्कालिक और व्यक्तिगत सुख के लिए अपने चरम सुख के साथ समझौता कर लेता हैए वह सुधारवादी हो सकता है क्रांतिकारी नहीं।

जीवन को समझने के लिए हमें जीवन मूल्यों को समझना होगा। दादा धर्माधिकारी ने जीवन मूल्य के पाँच लक्षण बताए हैं –

1. प्रमाणिकता
2. सार्वत्रिकता
3. निरपेक्षता
4. स्वतः प्रमाणयता
5. स्वभाव की अनुरूपता।

मूल्यों के परिवर्तन से ही जीवन परिवर्तन और समाज परिवर्तन संभव है वृति में परिवर्तन होने पर ही मूल्यों की स्थापना होगी। सर्वोदय दर्शन का उद्देश्य सुस्पष्ट है। उस उद्देश्य के अनुरूप साधन की अवधारणा भी साफ है।

हम शुरूआत के तौर पर अहिंसक लोकशक्ति के संगठन के लिए शांति सेना या अहिंसा वाहिनी सेना का व्यापक संगठन करें। यह तो आवश्यक हैए लेकिन इसमें भी अधिक जरूरी है कि शान्ति या अहिंसक क्रान्ति पर अमल करें। आज हमारा संस्कार ही हिंसक हो गया है। इसका परिष्कार कोई राजनेता या मठाधीश पण्डा या पुजारी नहीं कर सकताए वह तो सम्यक शिक्षा व्यवस्था से ही संभव है। आज की शिक्षा में न जीवन है न जीविका की गारन्टी। ऐसी स्थिति में इस शिक्षा से समाज का नेतृत्व पाने की आशा ही एक मृग मरिचिका है। आजादी के बाद अराजक पुलिस या अर्द्धसैनिक व्यवस्थापक लगभग 500 गुना खर्च बढ़ा है और उसी अनुपात में अपराध भी बढ़े हैं। स्पष्ट है कि यह तरीका निकम्मा और बेकार है। आतंकवाद का उत्तर गाँधी हैए जिसने चम्पारन में किसानों के लिए खेड़ा एवं बारडोली में अन्याय के खिलाफए दक्षिण अफ्रिका और भारत में रंगभेद और अस्पृश्यता के खिलाफ तथा अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध युद्ध किया। गाँधीजी ने 1908 में लंदन में दक्षिण अफ्रीका जाते समय जहाज पर ही श्हिन्द स्वराज्यश नामक एक छोटी सी किताब लिख डाली थी। उनकी दृष्टि में यह हिंसा को समर्थन कर देने वाली भारतीय विचारधारा के प्रतिवाद के रूप लिखा गया। आखरी समय में भी वे सम्प्रदायवाद से जूझते हुए मरे। आतंकवाद के लिए गाँधी की निष्ठा एवं उनका आत्मबलिदान चाहिए। हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में भी सुधार करना चाहिए। शिक्षा में हमने शान्ति और अहिंसा के तत्व को शामिल नहीं किया है। शिक्षा मानव मन और मानव संस्कार को ठीक करते हैं। दुर्भाग्य है कि हम धनुर्वेद और सैनिक विज्ञान को शिक्षा शास्त्र में प्रतिष्ठित स्थान देते हैंए परन्तु शक्ति शोध अहिंसा विज्ञान को अनावश्यक और अनुपयोगी मानते हैं। महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी और विनोबा के देश में 234 विश्वविद्यालय में से मात्र 10 विश्वविद्यालयों में गाँधी विचार और अहिंसा का छोटा–मोटा पाठ्यक्रम है। जबकि यूरोप और अमेरिका में लगभग 2000 शान्ति शोध के संस्थान है। आज देश में लगभग 10 हजार कॉलेज हैए पर प्रायः सभी जगहों पर प्रसार कार्य के रुप में सैनिक प्रशिक्षण (राष्ट्रीय सैन्य प्रशिक्षणए एन॰ सी॰ सी॰) हैए लेकिन शान्ति सेना का प्रशिक्षण बेकार समझा जाता है। आज तो विश्वविद्यालय के परिसर में हिंसक उपद्रवों के शमन के लिए बन्दुकधारी स्थायी सुरक्षा सैनिक रखे जाते है। यदि हिंसा और आतंकवाद का प्रशिक्षण दिया जाता है तो कलहए शमन और शांति का भी प्रशिक्षण देना होगा। इसलिए अहिंसा का अध्ययन –शोध तथा प्रशिक्षण जरूरी है। हमने प्रशिक्षण एवं शांति प्रसार का कार्य केवल साधु संतों पर छोड़ दिया हैए जो प्रायः साम्प्रदायिकताए भेदभावए अपने वर्चस्व को बनाये रखने में अपनी श्रेष्ठता समझते हैं। विश्व धम्र ओर विश्व नैतिकताए विश्व झाँकी का आधार है।

धर्मान्तरण के द्वारा सम्प्रदाय विस्तार भी धार्मिक साम्राज्यवाद का ही रूप है। भूमण्डलीकरण के नाम पर विकासशील देशों के शोषण वस्तुतः एक आक्रमणपूर्ण युद्ध है। इसी प्रकार पूँजीवादी या साम्यवादीए वैश्विक ईसाइयत या विश्व हिन्दुत्व या अखिल इस्लामियत की भावना और योजना विश्व शांति की बाधक है। वास्तव में यह 'अहिंसा परमो धर्मः' का आचरण करते है। परन्तु वास्तव में हिंसा परमो धर्म का आचरण करते हैं।

निष्कर्ष

गाँधी दर्शन और हमारा समाज इन दिनों विश्व को अहिंसा का नया सृजन फलक प्रदान कर रहा है। इसी कैनवास के जरिए हम विश्व को शांति के एक नये झरोखे द्वारा देख सकते हैं एवं गाँधी दर्शन की एक नई व्याख्या से रूबरू हो सकते हैं। आतंक बिखराव और दहशत से जूझते हुए विश्व को इन दिनों गाँधी दर्शन और उनका अहिंसा का प्रयोग सूत्र ही एक मात्र चिराग हैए जो इस विश्व को एक नया रास्ता दिखा सकता है। इस नयी सदी में गाँधीजी के दर्शन की नयी परिभाषा की जा सकती है। आज प्रश्न यह भी उठाया जा रहा है कि क्या गाँधी दर्शन इस नयी सदी के बदलते हुए परिदृश्य में भी इतनी ही प्रासंगिक हैए जितनी पहले थी।

आज के वैश्वीकरण के दौर में संसार के सामने जो विश्व स्तरीय चुनौतियाँ हैए उन्हें देखते हुए गाँधी दर्शन आज भी उतना ही स्वीकार्य हैए जितना पहले थाए शायद उससे भी कहीं ज्यादा।

गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता को दर्शाते हुए लेखक जनार्दन द्विवेदी का मानना है कि 75 साल पहले आधुनिक विश्व के दो असाधारण पुरूषों ने अपने–अपने देश में जनक्रांति का नेतृत्व किया। दोनों ही के अपने अलग–अलग विचार थे। वे अपने देश व विश्व को एक नये रास्ते पर ले जाना चाहते थे। जहाँ सभी प्रकार के शोषण और दमन से मुक्ति होए हालाँकि उनके लक्ष्य कमोबेश समान थेए लेकिन उन्हें प्राप्त करने का रास्ता और तरीका बिल्कुल भिन्न था। वे दोनों आत्म बलिदान और सादगी की प्रतिमूर्ति थेए वे महापुरूष थे – गाँधी और वी॰आई॰ लेनिन।

आज गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता शायद पहले से अधिक महसूस होने लगी है। वर्तमान में वैश्वीकरण के दौर में गाँधी पहले से अधिक प्रासंगिक हो गये हैं। आज पूरा विश्व आतंकवाद, संघर्ष, जलवायु परिवर्तन, परमाणु शस्त्रों की होड, नव उपनिवेशवाद, आर्थिक असमानता, गरीबी, भुखमरी, मानवाधिकार हनन एवं लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन जैसी घोर समस्याओं से जूझ रहा है। इस स्थिति में गाँधी जी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सर्वोदय, धर्म एवं राजनीति, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बन्धुत्व एवं लोकतंत्र पर दिए गए विचार एवं सुझाव विश्व की समस्याओं का एक मात्र समाधान प्रतीत होते हैं। अतः गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता समसामयिक विश्व में और अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गाँधी एम.के. : हिन्दी स्वराज और इण्डियन होम रूल, नवजीवन प्रकाशन हाउस, अहमदाबाद, 1938*
2. *चक्रवर्तीए विद्युत : सोशल एण्ड पोलिटिकल थ्योरी ऑफ महात्मा गाँधी, लंदन रॉडलेज, 2006*
3. *डगलसए ऐलन : 'द फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गाँधी फॉर द 21 सेन्चुरी' (21 वीं सदी के लिए महात्मा गाँधी का दर्शन परिचयात्मक अध्ययन), आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008*
4. *नगर, पुरूषोत्तम – ''आधुनिक भारतीय सामाजिक व राजनीतिक चिन्तन'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2000*
5. *सिंहए रामजी : 'गाँधी और मानवता का भविष्य', कॉमन वेल्थ पब्लिशर्स, 2008*
5. *रत्तू, डॉ॰ कृष्ण कुमार एवं डॉ॰ कमला : समग्र गाँधी दर्शन, गाँधी चिन्तन ओर वर्तमान*
6. *''प्रसंग'', आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2009*
7. *डॉ॰ धर्मवीर चंदेल, गाँधी चिंतन के विभिन्न पक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2012*